॥ श्रीहरिः ॥

卐

त्वदीयं वस्तु गोविन्द
तुभ्यमेव समर्प्यते

पथ की पहचान
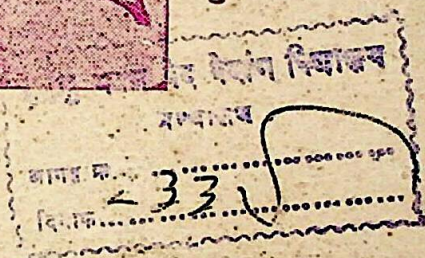
ब्रह्मीभूत
स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज

प्रस्तुत कर्ता -
बिहारीलाल टांटिया

प्रतिस्थान
धर्मचर्चा प्रकाशन
धर्मसंघ भवन
श्रीगंगानगर (राज०)

हरिद्वार में आयोजित

धर्मसंघ प्रशिक्षण शिविर में ज्योतिष्पीठ के जगद्गुरु शंकराचार्य अनन्तश्रीस्वामी कृष्णबोधाश्रमजी महाराज का प्रवचन

ज्येष्ठ शुक्ल ४ सम्वत् २०३१

कुम्भपर्व
हरिद्वार
२०३१

मूल्य
एक प्रति ३० पैसे
वितरण के लिए २० रुपये सैंकड़ा

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

प्रतिस्थान
धर्मचर्चा प्रकाशन
धर्मसंघ भवन
श्रीगंगानगर (राज०)

हरिद्वार में आयोजित

धर्मसंघ प्रशिक्षण शिविर में ज्योतिष्पीठ के जगद्गुरु शंकराचार्य अनन्तश्रीस्वामी कृष्णबोधाश्रमजी महाराज का प्रवचन

ज्येष्ठ शुक्ल ४ सम्वत् २०३१

कुम्भपर्व
हरिद्वार
२०३१

मूल्य
एक प्रति ३० पैसे
वितरण के लिए २० रुपये सैंकड़ा

को

पहचान

आप और हम सब जब कहीं जाते हैं, तो मार्ग पूछते हैं। कौनसा मार्ग हैं ? ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जो मार्गजाने बिना ही चल देता हो। इससंसार में हमभी और आपभी सब पथिक होकर आये हैं और मार्ग में चल रहे हैं। तो यह विचारना पड़ेगा-मार्ग कैसा होना चाहिए ? सबसे बढ़िया मार्ग कौनसा हैं ?

एक श्लोक है —

'एष निष्कण्टक: पन्था यत्र संपूज्यते हरि:' ।

कहते हैं, निष्कण्टक मार्ग हैं। कौनसा ? जिस मार्गमें हरि का पूजन हो।

'कुपथं तं विजानीयात् , गोविन्दरहितागमम्' ।।

जिसमें गोविन्द भगवान का कीर्तन नहीं, गोविन्द की चर्चा नहीं, ऐसा जो मार्ग है, उसे कुपथ समझो। कुपथ है वह।

वर्त्तमान शिक्षा

आज जो कुछभी शिक्षा में होरहा है आपके भारतमें-सब कुछ पाश्चात्य देशों का अन्धानुकरण है और कुपथ है। हो सकता है थोड़ी देर केलिए आपको इस लोकमें कुछ सुविधा मिल जाती हो, परन्तु परलोक का यह विनाश करनेवाला मार्ग है। यह समझ लो !

निष्कण्टक मार्ग

आप यहां पर कई दिनोंसे धर्मसंघ प्रशिक्षण शिविर में शिक्षा प्राप्त कररहे हो। इसलिए उसी प्रसंग में हम यही कह सकते हैं—

'कौनसा मार्ग है ? जो हमारेलिए ठीक हो।' तो देखो !

बात यह है, कि श्रीमद्भागवत् का जो महात्म्य है उसमें आत्मदेव नाम के जो पण्डित थे। जब उनका पुत्र धुन्धुकारी उपद्रव करने लगा तो वे घबरा-गये। उसी समय उनके गौसे जो पुत्र थे- गोकर्ण, वे आ गये। गोकर्ण ने स्थिति देखी तो कहा —

'पिताजी ! अब सब छोड़ दो। चले जाओ।'

तो हरिद्वार ही आयेथे वे। आत्मदेव कहते हैं —

'पुत्र ! मैं तो कुछ जानता नहीं, क्या करूंगा वहां जाकर ?

कितनी बढ़िया बात कही गोकर्ण ने; सुनने की बात है -

'धर्मं भजस्व सततं, त्यज भूतहिंसां,
सेवस्व साधुपुरुषञ्जहि कामशत्रुम्।
अन्यस्य दोषगुणकीर्तनमाशु मुक्त्वा,
सत्यं वदार्चय शिवं भज वासुदेवम् ॥'

गोकर्ण कहते हैं पिताजी ! निरन्तर धर्मका सेवन करो। मनसा वाचा कर्मणा किसीको पीड़ा न दो। सदाचारी पुरुषों का सत्संग करो। कामरूपी शत्रु को नष्ट करो। दूसरोंके गुणदोषोंका कीर्तन शीघ्र छोड़ दो। सत्य बोलो। शिव या विष्णु का भजन पूजन करो !

यह है मार्ग निष्कण्टक, समझे !

श्री मद्भागवत् का श्लोक है —

'परस्वभाव कर्माणि न प्रशंसेन्नगर्हयेत्।'

दूसरोंके स्वभावको, कर्मों को-अच्छा कौन ? बुरा कौन ? न प्रशंसा करो, न निन्दा करो। क्यों ?

'परस्वभाव कर्माणि यः प्रशंसक्ति गर्हति।
स आशु भ्रश्यतेरवार्थाद सत्या भिनिवेशतः ॥'

अरे यह विश्व क्या है ? प्रकृति पुरुषका सम्मिलन ही विश्व है। समझे आप ? अतः एकात्मभाव रखो।

जो प्राणी दूसरों के स्वभाव की, कर्मोंकी प्रशंसा करता है, निन्दा करता

है। वह स्वार्थ से गिर जाता है। क्यों ?असत्याभिनिवेश से। असद् वस्तु में अभिनिवेश कर रहा है।

कितना ऊंचा सिद्धान्त है आपका !

सत्य बोलो ! भगवान शिवका पूजन करो! और संसारमें रहो। यहां जन्म लिया है। रहना पड़ेगा। कैसे रहो ? बताया—

'देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतिं त्यजत्वम्।'

यह शरीर अस्थि रुधिर मय है। इसे अपना स्वरूप मत मानो।

'जाया सुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च।'

गृहस्थ में स्त्रीभी है, पुत्र भी है सम्बन्धी है। इनमें ममता मत रखो। यह समझो कि अपने २ कर्म भोगने हम सब आये हैं।

'पश्यानिशं जगदिदं क्षणभङ्ग निष्ठम्।'

इस जगत को नित्य मत मानो, क्षण भङ्गुर समझो।

'वैराग्य भाव रसिको भव योगनिष्ठः।'

प्रीत्या मया इदं... ... ...॥

कहते हैं, प्रेमसे मैंने आपको धर्ममार्ग बताया। इसको निष्कण्टक मार्ग कहते हैं।

प्रामाण्यविचार

हमारे भगवान आद्यशंकराचार्य ने लिखा है। क्या?

'श्रुतिस्मृतिपुराणानां आलयं करुणालयम्।'

जो श्रुति कहती है वही स्मृति कहे। जो स्मृति कहे वही पुराण कहे तो समझलो, वही प्रामाणिक हैं। एक श्लोकहै स्कन्द पुराणका —

'वेदाः प्रमाणं,स्मृतयः प्रमाणं,धर्मार्थयुक्तं वचनं प्रमाणम्।
नैतत् त्र्यस्य भवेत् प्रमाणं,...................................॥'

वेद प्रमाण हैं। धर्मशास्त्र प्रमाण है। वेद शास्त्रों को मानने वालोंके वचन प्रमाण है। जो कहता है कि —'मैं इन तीनों को प्रमाण नहीं मानता

तो फिर उसके वचनका ही क्या प्रमाण है ?

आदर्श माता मदालसा

मार्कण्डेय पुराणकी एक कथा है। वह आपके सुनने लायक है—

"एक रानी हुई है, 'मदालसा'। उसने यह प्रतिज्ञा की थी—"मेरे उदर से जो बालक होगा, उसे दूसरी माता के उदर में फिर नहीं जाना पड़ेगा।' यह है भारतवर्षका आदर्श।

उसके जब पहला पुत्र हुआ तो उसके पिता ने उस बालक का नाम रखा "सुबाहु"। मदालसा हंस पड़ी। राजा को अपने अपमानका अनुभव हुआ। पर वह बोला कुछ नहीं। 'पतिकी बातपर पत्नी हस पड़े तो उसका अपमान समझा जाता है.' मदालसाको दूसरा पुत्र हुआ. राजा ने उसका नाम रखा, 'विक्रांत'. मदालसा फिर हंस पड़ी. तीसरे बालक का नाम रखा 'अरिमर्दन'. मदालसा फिर हंसी।

अब राजा सोचता है कि मैं जो नाम रखता हूं, यह उसीका उपहास करती है।

हमारी शिक्षा

लो देखो ! हम कहा करते हैं और हमारा पूरा विश्वास है, साठ वर्ष होगये हमें साधु हुए। 'यह संसार बड़ी भारी पाठशाला है।' ये आपके स्कूल, कालेज कुछ नहीं हैं. संसार की पाठशाला को देखो। सबसे पहला गुरु हमारे इस जीवन का 'माता' है। उसके बाद पिता है, उसके बाद आचार्य है. इसीलिए उपनिषद् कहता है—

'मातृदेवो भव ! पितृदेवो भव ! आचार्यदेवो भव !'

माताको देवता मानो. पिताको देवता मानो. आचार्य को देवता मानो. 'आचार्य' शब्दका अर्थ जानते हो, क्या है ?

आजकल अंग्रेजी में प्रोफेसर, प्रिन्सीपल बना रखे हैं लोगों ने। हिन्दी में भी प्राचार्य, प्रधानाचार्य—ये कुछ नहीं है। आचार्य बहुत ऊंचा शब्द है—

आचिनोति च शास्त्रार्थम्, आचारे स्थापयत्यपि ।
स्वयमाचरेत् यस्तु स आचार्यं प्रचक्षते ।।

जो शास्त्रों के अर्थों का सञ्चय करे, पूर्वापर से विचार करके अपने शिष्यों को आचार में लगावे। स्वयं उसका आचरण करे, तब उस आचार्य पद का अधिकारी होता है वह।

मदालसा का उल्लापन

मदालसा के जब पहला पुत्र हुआ तो बालक का काम है अनादि कालका, बनाया ही भगवान ने ऐसा है -'बालानां रोदनं बलम्'।
तो पुत्र जब रोने लगा तो मदालसा ने उसे रोते देखकर, उसको, संस्कृत में उसे 'उल्लापन' कहते हैं पञ्जाबी लोग लोरियां कहते हैं। तो मदालसा का उल्लापन सुनो! मदालसा उल्लापन में क्या कहती थी? मार्कण्डेय पुराण का श्लोक है। व्यास भगवान ने बड़ समारोह से लिखा है—

'शुद्धोऽसि रे तात्! न तेऽस्ति नाम, कृतं हि ते कल्पनयाधुनैव।'

हे तात्! तूं क्यों रोता है? तू शुद्ध है। शुद्ध बुद्ध आत्मतत्व तेरा रूप है। तेरा नाम रूप तो मिथ्या है। यह तो व्यवहार की कल्पना के लिए नाम रखा गया है; वास्तव में तू नाम रूप के अतीत है। ये उल्लापन है यहां की माताओं के!

'पञ्चात्मकं देहमिदं न तेऽस्ति, नैवास्य त्वं रोदिषि कस्य हेतोः।।'

पञ्चभूतों का बना शरीर तेरा स्वरूप नहीं है। फिर किसलिए रो रहा है? मदालसा कहती है—

'भूतानि भूतैः परिदुर्बलानि, वृद्धिं समायान्ति यथेह पुंसः।
अन्नाम्बुदानादिभिरेव कस्य, न तेऽस्ति वृद्धिर्नच तेऽस्ति हानिः।।

'अरे! जैसे कोई मकान किसी ने बनवाया है। वह जीर्ण शीर्ण होने लगे तो उसकी रक्षा के लिए उसकी मुरम्मत करवा देते हैं और वह पुनः पुष्ट हो

जाता है वैसे ही यह शरीर रूपी मकान है आत्मा का । जीवात्मा को अन्न जलादि देकर के उसकी रक्षा की जाती है । केवल यही तत्व हो, ऐसा नहीं है । शरीर से इसको कोई हानि नहीं, शरीर से कोई वृद्धि नहीं । इसके बनने से तेरा कोई लाभ नहीं ।

रही सम्बन्धों की बात ? मदालसा कहती है—

'शुभाशुभैः कर्मभिः देहमेतन्मदादि मूढ़ै कञ्चुकस्ते पिनद्धः ।'
'तातेति किंचित् तनयेति किंचिदम्बेति किंचद्दयितेति किंचित् ।
ममेति किंचिन्न तवेति किंचित् त्वं भूतसंघं बहुमानयेथाः ।।'

'घर में रहते हैं गृहस्थ लोग; यह मेरा बाप है, यह मेरा बेटा है यह मेरी बहू है यह मेरी माँ है। क्या है यह ? यह पाप पुण्य की गाँठ बंधी हुई है । यह पाप पुण्य, काम-क्रोध लोभ-मोह मत्सर—इनकी ग्रन्थी का नाम शरीर है । ग्रन्थी का नाम कहीं बाप हो गया, कहीं नाम पुत्र हो गया, कहीं पत्नी हो जाय, कहीं माता हो जाय । यह पञ्चभूतों का समुदाय यह पाप पुण्य की ग्रन्थि है । अरे पुत्र इसको आत्मा मत मान लेना । इसी को सत्य मत मान लेना ।'

कितना सुन्दर उपदेश है ? अन्त में क्या कहा ?

'त्यज धर्मम धर्मञ्च, उभे सत्यानृते त्यज ।
उभे सत्यमनृतं त्यक्त्वा, येनत्यजसि तत्त्यज ।।'

'धर्म भी त्यागो, अधर्म भी त्यागो । सत्य और असत्य दोनों त्यागो । कैसे ? क्या समझे आप, इसका मतलब ?

'त्यज धर्मं असंकल्पात् अधर्मं चाप्यलिप्सया ।
उभे सत्यानृते बुद्ध्या बुद्धि परम निश्चयात् ।।'

'धर्म को त्यागो । धर्म बनता है संकल्प से । जितने यज्ञयागादि धर्म कर्म होते हैं उनमें पहले संकल्प बोला जाता है । जब तुम्हारा संकल्प ही नहीं होगा तो धर्म ही नहीं होगा ।

अधर्म को त्यागो। जितनी तुम्हारी लिप्सा होगी, यह हो, वह हो, उसकी पूर्ति के लिए अधर्म करोगे। लिप्सा नहीं होगी तो अधर्म भी नहीं होगा। संसार क्या है ? सत्य और अनृत का जाल, 'सत्यानृते मिथुनीकृत.'। भाष्यकार की पंक्ति है: सत्य और अनृत का नाम संसार है। इसको कैसे छोड़ो ? 'विषयाना त्मका बुद्धि बनाओ। सन्मार्ग विषयिणी बुद्धि बनाओ। बुद्धि को कैसे छोड़ोगे ? बुद्धि भी छोड़नी पड़ेगी मोक्ष में जाने के लिए। अपने स्वरूप का निश्चय करके बुद्धि को त्याग दो।'

'इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था, अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धि बुद्धेरात्मा महान् परः ॥'
'एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥'

यह उपदेश था मदालसा का। उसका परिणाम क्या हुआ ?
वह पुत्र बड़ा हो कर के जङ्गल में चला गया। वहाँ जाकर के समाधिस्थ हो गया। मुक्ति में चला गया। जीवन मुक्त होकर घूमने लगा। तीनों पुत्रों की यही दशा हुई।
मदालसा को चौथा पुत्र होने वाला था। उसका पति बोला— यह क्या बात है ? मैंने जो जो नाम रखा, तूने उपहास किया। अब चौथा बालक होने वाला है। इसका नाम तुम रखना अपने आप। मैं नहीं रखूंगा। चौथा बालक हुआ। उसका नाम रखा मदालसा ने— अलर्क'। अलर्क कहते है, बावले कुत्ते को। राजा बोला—'राजकुमार का ऐसा असम्बद्ध नाम क्यों ? मदालसा बोली—'महाराज ! विख्यात नाम कहां है ? नाम तो व्यवहार के लिए है। आपने जो नाम रखे हैं: वे भी असम्बद्ध और निरर्थक ही हैं। कैसे ? सो बतलाती हूँ। आपने पहले पुत्र का नाम रखा 'सुबाहु'। सुबाहु कहते हैं सुन्दर भुजा वाले को। आत्मा निराकार है, निष्क्रिय है, शान्त है. वहां सुबाहु कहां है ? आपने नाम रखा विक्रान्त'। क्रान्ति का अर्थ है गति। आत्मा में तो गति है ही नहीं। वह तो सर्वगत हैं। सर्व व्यापक है।

विख्यात विक्रांत कहां है ?

'अरिमर्दन'–एकात्मा तु शत्रुमित्रकम् ।

तुम यही तो कहोगे कि व्यवहार के लिए। तो मेरे नाम से भी व्यवहार चल जायगा ।

प्रवृत्ति मार्ग का उपदेश

अन्त में राजा ने कहा, 'देखो, मेरा वंश नष्ट हो जायगा । प्रवृत्तिमार्ग भी एक मार्ग है, वेद का । मेरे चौथे पुत्र को प्रवृत्ति मार्ग में लगाओ ।'
मदालसा बोली–'यह तो मेरे बांये हाथ का काम है ।' ऐसी माताएं होनी चाहिए ।

चौथा बालक हुआ । जब वह रोता था, उसे यह नहीं कहा कि 'सुख दुख से रहित हो तुम ।' क्या कहा ?

'धरामरान पर्वसु तर्पयेथाः ।'

ओ पुत्र ! तू राजकुमार बनेगा । राजा होगा । राजा होकर एक काम करना 'पृथ्वी के देवता जो ब्राह्मण है, उन्हें पर्व के दिन तुम तृप्त करना ।'

'समीहितं बन्धुषु पूरयेथाः ।'

बन्धु बान्धवों की इच्छा पूर्ण करना । और

'हितं परस्मै हृदि चिन्तयेथाः ।'

अपने हृदय में दूसरों की भलाई का ध्यान रखना । और

'मनः परस्त्रीषु निवर्तयेथाः ।'

परायी स्त्रियों की ओर कभी मनको न जाने देना ।

यह गृहस्थ का आदर्श बताया और सबसे बढ़िया बात क्या बतायी ? अगले श्लोक में यह बताया, बड़ा बढ़िया उपदेश है । मदालसा आगे कहती है—

'सदा मुरारिं हृदि चिन्तयेथाः ।'

यह नहीं कि रात दिन खाने पीने में ही लगे रहो। बेटा ! गृहस्थ में रहकर मुरारि को मत भूलना। मुरारि भगवान का सदा हृदय में चिन्तन रखना।

'तद्ध्यानतोऽन्तः षडरिञ्जयेथाः ।'

गृहस्थ में काम है, क्रोध है, लोभ है, मोह है, मद है, मत्सर है, ये छै शत्रु हैं। इन्हें षड् खल अरि कहते हैं संस्कृत में। छै शत्रु हमारे हृदय में रहते हैं और हर समय आक्रमण करते हैं हमारे ऊपर। हरिद्वार में आये हो आप। यहां भी आक्रमण करते हैं वे। पीछा नहीं छोड़ेंगे कहीं भी। क्या करोगे ?

'मायां प्रबोधेन निवारयेथा; ह्यनित्यतामेव विचिन्तयेथाः ॥'

'मुरारी के ध्यान से छै शत्रु हैं तुम्हारे, इनको जीतना। ज्ञान के द्वारा माया का निवारण करना। गृहस्थ में माया का पूरा विकास है।'

माया का स्वरूप

वेदान्त का श्लोक है;

माया ने भगवान से प्रार्थना की—'महाराज ! मेरा क्या काम है ?'

भगवान बोले—संसार के जीवों को मोक्ष में जाने से रोक दो।'

माया बोली—महाराज ! मुझे स्थान बताओ, जहाँ बैठकर मैं संसार को चलाऊं।' तो लिखा है—

'द्वेधा द्वेधा — — — — — कान्तासु कनकेषु च ।'

परमात्मा ने माया को दो जगह बतलायी है—'कान्तासु कनकेषु च'।

ये (स्त्रियों की ओर संकेत करके) सब माया बैठी हैं।

भगवान बोले, 'तासु तेषु च अनासक्तः ।' जो इन दोनों में आसक्त न हो, उसे कुछ मत कह देना। वहां तेरी दाल नहीं गलेगी।

'तासु तेषु च अनासक्तः, साक्षात् भर्गो नराकृतिः ।'

जो काम और कान्ता में आसक्त नहीं, वह आकार मनुष्य का भले ही हो, वह साक्षात भर्ग हैं, 'भर्गोदेवस्य धी महि ।' मेरा ही तेज है वह । इसीलिए मदालसा कहती थी, 'माया प्रबोधेन निवारयेथा' गृहस्थ में तो पूरी माया है । स्त्री है । पुत्र है । यह सब तो माया का ही परिवार है । इसमें फंसे हो । अब कैसे निकलोगे ? प्रबोध के द्वारा ।

नित्य सत्संग करो । अभिप्राय यह है कि रात को सोने से पहले संसार के व्यापार की जो वासनाएं जमी हैं हृदय में, उनको दूर करके सोया करो । ये सपने ऊलजलूल दीखेंगे नहीं । और यह हमेशा ध्यान रखना, गृहस्थ में रहते हुए कि, 'हम अनित्य हैं, अनित्य हैं ।' यह बात है । उसका फल क्या हुआ ?

वह, अलर्क, गृहस्थ बना, राजा बना ।

अन्त में मदालसा बन को जाने लगी । पति से बोली–'अब चलो ।' देखो ! घर में मरने का बहुत निषेध है और आजकल सफाखाने में मरना । अभी एक ब्राह्मण मर रहा था सफाखाने में । उसका भाई हमसे कह रहा था— 'महाराज ! डाक्टर बोला कि 'यह तो आज मरेगा । लेजा इसे ।' मैंने उसे उठाया और बाहर खड़े होकर किसी सवारी की प्रतीक्षा करने लगा । तो मेरा रोगी भाई बोला, 'देखो ! दो आदमी खड़े हैं फांसी लिए हुए, मेरे सामने । मुझे बचाओ इनसे ? यम के दूत दिखाई दिये उसको । वहीं मर गया वह । अतः सफाखाने मत लेजाना किसी को । कोई बीमार हो तो गङ्गा ले जाना, काशी ले जाना, प्रयाग ले जाना । अस्तु ।

माता की धरोहर

फिर वह मदालसा पति को लेकर, अलर्क को राजा बनाकर बन को गई ।

धरोहर, उत्तराधिकार, कहते हैं न कि 'बाप हमें यह धरोहर दे गया।' माँ हमें यह यह अगूठी दे गयी है।' तो मदालसा ने चलते समय अपने मन में सोचा, मेरा संकल्प था मेरे उदर से उत्पन्न होने वाला दूसरी मां के उदर में न जाय। और मैंने इसे (अलर्क को) फिर उसी (प्रवृत्ति) मार्ग में लगा दिया। मोक्ष तो होगी नहीं।'

तो उसने क्या किया ?

उसी समय अपने पुत्र से बोली—'पुत्र मैं तुझे अगूठी दिये जाती हूं। इसको रखना पास में। इसमें मैंने आदेश लिखा है तेरे लिए। कब के लिए ? गृहस्थ हरसमय ममता में रहता है। न जाने किस समय क्या आपत्ति आ जाय—पुत्र मर जाय, घर वाली मर जाय, धन नष्ट हो जाय।' तेरे ऊपर जब घोर आपत्ति आये और उपाय न सूझे तुझे तब, इस अंगूठी में मैंने दो श्लोक लिखें हैं, इन्हें पढ़ लेना। तेरी आपत्ति दूर हो जायगी।' यह अंगूठी की धरोहर देकर गयी वह।

अलर्क राज्य करने लगा। राज्य का मद बड़ा भारी होता है। वह भूल गया सब बात। उसके बड़े भाई ने सोचा—'हम अपनी मां के चार पुत्र हुए। तीन तो मुक्त हुए, जीवनमुक्त। एक घर में है। इसे निकालना है। यह अब विषयों में आसक्त है। विषयों में आसक्त होकर निकलना कोई आसान बात नहीं है।

इसलिए भगवान श्री कृष्णचन्द्र परमानन्द गोपियों से कहते हैं—

'न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां, स्वसाधुकृत्यं बिबुधायुषापि वः।
या मा भजन् दुर्जरगेह श्रृङ्खलाः, संवृश्चय तद् वः प्रतियातु साधुना।'

'आप लोगों ने जो सारे घर के सम्बन्धों को छोड़ कर मेरी शरण ग्रहण की हैं, इसका बदला मैं देवताओं की आयु में भी नहीं पूरा कर सकता।'

घर की जो शृंखला है, वह बड़ी दुर्जय है। तुम लोग यहां (शिविर में)

रह रहे हो। देख रहे हो कि कब शिविर पूरा हो और हम घर चले।

तो अलर्क के बड़े भाई सुबाहु ने उसके पास जाकर कहा—'मैं ज्येष्ठ भ्राता हूं तेरा। राज्य का अधिकारी मैं हूं।'

अलर्क बोला—'क्षत्रिय का काम माँगने का नहीं। राज्य लेना है तो युद्ध करो।'

मोक्ष की कामना करो !

सुबाहु ने काशी नरेश से सन्धि की। अलर्क पर आक्रमण किया। अलर्क घबरा गया। देखा राज्य भी छिनेगा, प्राण भी जायेंगे। तो उसने माता का वचन याद किया। पण्डित जी को बुलाया। वेद पाठ करवाया। पूजन करवाया उसी अंगूठी का। उसमें जो आदेश था उसे निकाला।

देखो ! माता ने क्या लिखा था ? वह भी सुनने की बात है—

> 'कामः सर्वात्मना हेयो, हातुं चेच्छक्यते न सः।
> मुमुक्षा प्रति तत्कार्यं सैव तस्यापि भेषजम् ॥'

शुभाशुभ कोई कामना मत करो। कामनाओं का सर्वथा त्याग करो। कामना यदि न त्यागी जाय तो मोक्ष की कामना करो।'

> 'मोक्षकामो न बन्धनः।

अलर्क बोला—'दुःख दूर हो गया।' तो कामना से दुःख होता है। व्यास जी लिखते हैं—

> 'कामबन्धन ये वेदं, कामदृष्टिः बन्धनम्।
> कामबन्धेन मुक्तो हि, नेह भूयोऽभिजायते ॥'

यह महात्मा से मत पूछो कि 'हमारा जन्म होगा या नहीं ?' तुम स्वयं देख लो। यदि कामना का अंकुर है तो जरूर जन्म होगा। सारा संसार काम से बन्धा हुआ है।

सज्जनों का सत्संग करो

अलर्क कहता है 'मुझे राज्य की कामना थी, दुःख था। माता कहती है—'कामना सर्वात्मना त्याज्य है।' उसने पण्डित जी से आगे पढ़ने को कहा। आगे लिखा था—

'सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः, स चेत्युक्तं न शक्यते।
स सद्भि सह कर्त्तव्यः, सतां सङ्गो हि भेषजम्॥'

किसी का सङ्ग मत करो। न अच्छे का न बुरे का। यदि अकेले रहने में मन न लगता हो, विक्षेप होता हो, तो क्या करो? तो कहा है—सज्जनों का सत्संग करो। 'सतां संगो हि भेषजम्।' सज्जनों का संग औषधि होता है।

अलर्क बोला—'बस अब मुझे कोई दुःख नहीं।'

वह सब कुछ छोड़कर चल दिया और भगवान दत्तात्रेय के पास गया। दत्तात्रेय जी ने उसे उपदेश किया। बड़ा उत्तम उपदेश है वह। सारा अद्वैतवाद का निरूपण है उसमें।

अलर्क अब समाधिस्थ हुआ और समाधिस्थ होकर अन्त में उसने कहा—अहो! मुझे क्या मालूम था कि इससे भी ऊपर कोई बात है। इस मारवाड़ से भी आगे कोई चीज है।

आनन्दोदधि वर्तमानः ————।

'अरे! मैं तो आनन्दरूपी क्षीर सागर में रहता था और उसी आनन्दरूपी क्षीर सागर के दूध को विषय रूपी अग्नि में तपा तपा करके विषयों का आनन्द भी लेता था और जलता भी रहता था। जैसे कोई सज्जन गाय का दूध खूब गर्म करके पीवे तो होंठ भी जल रहे हैं, जीभ भी जल रही है और स्वाद भी आ रहा है।'

यह है भारत का आदर्श। यहां धर्म संघ के शिविर में सत्संग में आकर ऐसे बन कर जाओ। कहीं वहां जाकर फिर वैसे ही न हो जाना। यहां पर तुमने शिखा भी रखी है। सन्ध्या भी सीखी है। योगासन भी सीखे हैं। कहीं वहां (घर पर) जाकर पुन: वहीं के वहीं —

'काक पढ़ाये पींजरा, पढ़ गये चारों वेद।
जब देखीं डाली कुटुम्ब की, रहे ढ़ेढ़ के ढ़ेढ़॥

यह न हो कहीं। कुछ आगे बढ़ो।

निष्कर्ष यह है

आज हमने सत्संग में यही कहा—

'एष निष्कण्टक: पन्था, यत्र संपूज्यते हरि:।
कुपथं तं विजानीयात, गोविन्द रहितागमम्॥'

मनु महाराज साफ कहते हैं—

'या वेद वाह्या स्मृतय: याश्चकाश्च कुदृष्टय:।'
'वेद बाह्य स्मृतियां सब कुदृष्टियां हैं।'
सर्वास्ता: निष्फला: प्रेत्य।'

'सब निष्फल हैं। सब नरक में ले लाने वाली हैं।'

'पितृदेवमनुष्याणां वेद: चक्षु: सनातनम्।'

'पितर, देव और मनुष्य इन तीनों का चक्षु वेद है।

'अशक्यमप्यप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थिति:।'

इसलिए अपने गांव में जाकर पाठशाला खोलना, वेद-शास्त्रों की। अपने बालकों को वहां और कुछ न हो तो भी कम से कम मुसलमानों की तो नकल करो। मुसलमान मस्जिदों में बालकों को रोजा, नमाज पढ़ाता हैं, कुरान की आयतें कण्ठ कराता हैं। तुमने तो मन्दिर में भी स्कूल खोल दिये। मन्दिरों में कम से कम इतना तो हो कि तुम्हारे बालक रोज जाकर वहां विष्णु सहस्र नाम पढ़े, रामायण पढ़ें। सन्ध्या सीखें। गायत्रीजप सीखें। इतना तो करो, ज्यादा भी यदि न हो सके। यही हमें कहना था। तभी यहां के सत्संग का लाभ होगा।

कल्याण का पथ

हमारे जीवन का मौलिक आधार ज्ञान है। उस ज्ञान की प्राप्ति शिक्षा से होती है। शिक्षा से भावना और भावना के अनुकूल प्रवृत्ति होने से जो कार्य होते हैं उन्हीं से हमें सिद्धि मिलती है। भगवच्चर्चा हमारी भावना को शुद्ध बनाती है। भले ही आप थोड़ी देर क्यों न भगवत्-चर्चा सुनते और गाते हों, वह लाभप्रद ही है।

शिक्षा में वास्तविक सुधार स्कूलों और कालेजों की शिक्षा-प्रणाली के परिवर्तन पर ही सम्भव है। हमें जैसी शिक्षा मिलेगी, हमारे बोलने, उठने-बैठने आदि समस्त व्यवहारिक कार्यों पर उसका प्रभाव पड़ेगा। यदि हमारी शिक्षा शास्त्रीय प्रणाली से होगी तो हमारा जीवन शास्त्रीय आचरणों की ओर उन्मुख होकर पवित्र एवं सुखदायी बनेगा।

जीवन के व्यवहारिक पक्ष के सुधार के लिए मनुष्य को धर्मानुकूल निम्नलिखित पांच नियमों से अर्थोपार्जन करना चाहिए:—

१. दूसरों का गला दबाकर पैसा न लें,
२ माता-पिता की सम्पत्ति को नष्ट न करें,
३. चोरी से और बलात् किसी के धन को न चाहें,
४. संतापरहित धनोपार्जन करें,
५. शास्त्रीय सत्-मार्ग का किसी भी दशा में उल्लंघन न करें।

हम प्रत्येक क्षण इस बात का ध्यान रखें कि हमारा शास्त्र कहता है कि पैसा कमाने में हम कष्ट उठाकर भी कभी धर्म का त्याग न करें। धर्म की थोड़ी-सी कमाई भी अधिक काम करती है, जब कि अधर्म की कमाई व्यर्थ में नष्ट हो जाती है।

धर्मात्मा को चाहिए कि वह अपनी धर्म की कमाई को निम्नलिखित पाँच कर्मों में खर्च करे-

१. यज्ञादि सत्कर्मों में,
२ कुआं, बावली, मन्दिर व सरोवर आदि के निर्माण में,
३. सादा जीवन उच्च विचार का दृष्टिकोण रखते हुए आवश्यकता मात्र के शरीर के पोषण में,
४. पितृकर्मों में,
५ सदाचारी भूखों एवं हीनों की सहायता में.

आश्रमीय जीवन में गृहस्थाश्रम विशेष दायित्वपूर्ण है। इसमें प्रवेश करने के पूर्व उस मंत्र को सीख लेना चाहिए, जिससे जीवन सुखमय हो।

गृहस्थाश्रमी से पितर, देव,ऋषियों, ब्रह्मचारियों तथा पशु-पक्षियों के जीवन का पालन पोषण होता है इसलिए प्रत्येक गृहस्थाश्रमी को चाहिए कि वह अपना जीवन शास्त्रीय पद्धति से व्यतीत करते हुए अपना ध्यान भगवान् के चरणों में रखे। काम, क्रोध लोभ आदि आन्तरिक शत्रुओं पर विजय पाने के लिए पूर्णरूपेण प्रयत्नशील रहे। असमर्थ दशा में भगवान् से आर्तभाव में प्रार्थना करे कि हे 'प्रभो! आपका घर लुट रहा है।' इससे भगवान् की शक्ति आपकी सहायक होगी। अपने जीवन में श्रद्धा लायें और कामनाओं को त्याग कर धर्मशील-जीवन को अपना आदर्श मान मोक्ष-प्राप्ति का उद्देश्य बनायें।

सार यही कि आप लोग धर्म को न छोड़े। धर्म की विजय सदैव हुई और होगी-'यतो धर्मस्ततो जयः।' धर्म-पालन से अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति स्वतः होती है। शास्त्र की मर्यादा कभी न छोड़ें तथा नित्य भगवान्नाम-संकीर्तन और सत्संग का सेवन करें।

ध्वजावन्दन

ध्वजो धूयतां धर्मसंघस्य लोके ।
अयं भारते भासतां भावुकानाम्
ध्वजो धर्मसंघस्य सद्धार्मिकाणाम्
जयी विश्व शास्ता प्रियो मातृभूमेः
प्रतीको महान् धर्म तन्त्रस्य जातेः ॥ १ ॥
ध्वजो धूयतां............

अयं वेदगोप्ता सदा धर्मधारी
तथा सर्वथा बिश्व कल्याणकारी
अमुष्याधुना मान रक्षा विधेया
समागत्य सर्वैः स्वयं भो विधेयाः ॥ २ ॥
ध्वजो धूयतां............

शुभो हिन्दुराष्ट्रस्य जागर्तिकारी
सदा स्वस्तिकेनाँकितो भीतिहारी
तथा ऽऽलस्य-पाखण्ड-विध्वंसकारी
भवेदास्तिकानां सदैवाग्रचारी ॥ ३ ॥
ध्वजो धूयतां............

अमुष्मिन्प्रशस्तिः परा पूर्वजानाम्
महाशक्ति रेषोऽधुना सङ्गतानाम्
तथा भाविराष्ट्रस्य सन्मार्ग दर्शी
ध्वजो धूयतां धार्मिकोऽभीष्टवर्षी ॥ ४ ॥
ध्वजो धूयतां धर्मसंघस्य लोके ॥

आवरण न्यू भाटिया प्रिन्टर्स एवं शेषपृष्ठ जिन्दल प्रिंटिंग प्रेस
श्री गंगानगर में मुद्रित ।